

The Hindu Important News Articles & Editorial For UPSC CSE

Friday, 28 March, 2025

Edition : International Table of Contents

<p>Page 04 Syllabus : Prelims fact</p>	<p>अरुणाचल में आयोजित तीनों सेनाओं के अभ्यास में निगरानी के लिए एकीकृत दृष्टिकोण अपनाया गया</p>
<p>Page 06 Syllabus : GS 3: Environment and Disaster Management</p>	<p>केंद्र ने राज्यों से गर्मी से संबंधित बीमारियों से निपटने के लिए तैयार रहने को कहा</p>
<p>Page 07 Syllabus : GS 2: Social Justice</p>	<p>गर्भपात, भ्रूण की व्यवहार्यता और उसके कानूनों तक पहुंच: महिलाएं क्रॉसफायर में फंसी हुई हैं</p>
<p>Page 08 Syllabus : GS 2 : International Relations</p>	<p>अमेरिकी रक्षा संबंध - भारत को अपनी आंखें खुली रखने की जरूरत है</p>
<p>Page 10 Syllabus : GS 2 : International Relations</p>	<p>तीसरी भाषा के लिए दोषपूर्ण प्रयास</p>
<p>Page 08 : Editorial Analysis: Syllabus : GS 2 : Indian Polity</p>	<p>न्यायपालिका का 'चट्टान और कठिन जगह के बीच' का क्षण</p>

—It's about quality—

भारतीय सशस्त्र बलों ने 25 से 27 मार्च, 2024 तक अरुणाचल प्रदेश में त्रि-सेवा एकीकृत बहु-डोमेन युद्ध अभ्यास प्रचंड प्रहार का आयोजन किया।

Tri-service exercise held in Arunachal takes integrated approach to surveillance

The Hindu Bureau
NEW DELHI

The Army conducted a tri-service integrated multi-domain warfare exercise, 'Prachand Prahaar', in the high-altitude terrain of Arunachal Pradesh from March 25 to 27, according to an official statement on Thursday. The exercise, aimed at "validating a fully integrated approach to surveillance, command and control, and precision firepower across the three services", brought together the operational teams in a synergised combat drill designed to simulate future warfare.

"Carried out under the aegis of the Eastern Command, the exercise showcased the seamless integration of advanced surveillance, strike capabilities, and multi-domain operational planning. Cutting-edge platforms such as long-range maritime reconnaissance aircraft, armed helicopters, UAVs,



Army officers overseeing the presentation of combat drones during the exercise, March 27. X/@EASTERNCOMD

loitering munitions, and space-based assets were employed to achieve total situational awareness and rapid target engagement," the Defence Spokesperson for Manipur, Nagaland and Southern Arunachal Pradesh said in a statement. Once simulated targets were identified, they were swiftly neutralised through coordinated strikes involving fighter aircraft, long-range rocket systems, artillery up to calibre 155 mm, swarm drones, kamikaze drones, and armed helicopters. These operations

were conducted within an electronically contested environment designed to replicate the modern battlefield scenarios, he added.

The statement highlighted that 'Prachand Prahaar' builds upon the momentum of Exercise Poorvi Prahar, which focused on the integrated application of aviation assets. This underscores the emphasis on "jointness, technological superiority, and readiness to tackle multi-domain threats," the statement concluded.

मुख्य विशेषताएं

- ▶ पूर्वी कमान के तहत आयोजित इस अभ्यास का उद्देश्य संयुक्त अभियानों को बढ़ाना, युद्ध की तैयारी में सुधार करना और उन्नत निगरानी और हमला करने की क्षमताओं को एकीकृत करना है।
- ▶ आधुनिक युद्ध की उभरती प्रकृति को देखते हुए, इस तरह के अभ्यास भारत की रक्षा तैयारियों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण हैं, खासकर इसकी संवेदनशील सीमाओं पर।

अभ्यास के उद्देश्य

- ▶ तीनों सेवाओं में एकीकृत निगरानी, कमान और नियंत्रण, और सटीक मारक क्षमता को मान्य करना।
- ▶ उन्नत सैन्य तकनीकों को शामिल करके भविष्य के युद्ध परिदृश्यों का अनुकरण करना।
- ▶ प्रतियोगी इलेक्ट्रॉनिक युद्ध के माहौल में संयुक्त परिचालन क्षमता को बढ़ाना।

मुख्य विशेषताएं

- ▶ **उन्नत प्लेटफार्मों का एकीकरण:**
 - लंबी दूरी के समुद्री टोही विमान
 - सशस्त्र हेलीकॉप्टर और यूएवी (मानव रहित हवाई वाहन)
 - घूमने वाले हथियार और अंतरिक्ष आधारित संपत्तियाँ
 - ड्रोन और कामिकेज़ ड्रोन
- ▶ **नकली युद्धक्षेत्र का माहौल:**
 - परिचालन लचीलापन का परीक्षण करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक युद्ध की स्थिति।
 - लड़ाकू विमान, लंबी दूरी की रॉकेट प्रणाली, 155 मिमी तोपखाने और सशस्त्र हेलीकॉप्टरों से जुड़े समन्वित हमले।
- ▶ **पिछले अभ्यासों की निरंतरता:**
 - अभ्यास पूर्वी प्रहार पर आधारित है, जो विमानन परिसंपत्ति एकीकरण पर केंद्रित था।
 - संयुक्तता, तकनीकी श्रेष्ठता और बहु-क्षेत्रीय खतरों के लिए तत्परता पर जोर देता है।

सामरिक और रक्षा प्रासंगिकता

- ▶ सेना, नौसेना और वायु सेना के बीच अंतर-संचालन को मजबूत करता है।
- ▶ सीमा सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण उच्च ऊंचाई वाले युद्ध में भारत की तैयारी को बढ़ाता है।
- ▶ आधुनिक युद्ध रणनीति के साथ संरेखित करते हुए निगरानी, सटीक हमलों और बहु-क्षेत्रीय संचालन में क्षमताओं का प्रदर्शन करता है।

UPSC Prelims Practice Question

प्रश्न: अभ्यास 'प्रचंड प्रहार' के संबंध में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें:

1. यह लद्दाख के उच्च ऊंचाई वाले इलाके में आयोजित किया गया था।
2. यह एक त्रि-सेवा एकीकृत बहु-डोमेन युद्ध अभ्यास है।
3. अभ्यास संयुक्त निगरानी, सटीक हमलों और इलेक्ट्रॉनिक युद्ध पर केंद्रित था।

ऊपर दिए गए कथनों में से कौन सा/से सही है/हैं?

- (a) केवल 1 और 2
- (b) केवल 2 और 3
- (c) केवल 1 और 3
- (d) 1, 2 और 3

उत्तर: (b) केवल 2 और 3

► गर्मी की शुरुआत के साथ ही भारत में तापमान में वृद्धि देखी जा रही है, इसलिए केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने राज्यों को गर्मी से संबंधित बीमारियों के लिए तैयारियों को मजबूत करने का निर्देश दिया है। यह निर्देश सार्वजनिक स्वास्थ्य लचीलापन, स्वास्थ्य सेवा के बुनियादी ढांचे की तत्परता और अत्यधिक गर्मी की घटनाओं के प्रभाव को कम करने के लिए सामुदायिक स्तर पर हस्तक्षेप पर जोर देता है।

1. गर्मी से संबंधित स्वास्थ्य चुनौतियों को समझना

(i) स्वास्थ्य पर अत्यधिक गर्मी का प्रभाव

- हीटस्ट्रोक और हीट थकावट: निर्जलीकरण, शरीर का उच्च तापमान और गंभीर मामलों में अंग विफलता।
- श्वसन और हृदय संबंधी तनाव: कमजोर आबादी (बुजुर्ग, बच्चे, गर्भवती महिलाएं, बाहरी कर्मचारी) स्वास्थ्य जोखिमों का सामना करते हैं।
- संक्रामक रोग: उच्च तापमान के कारण दूषित पानी और भोजन खराब होने से जठरांत्र संबंधी रोग हो सकते हैं।
- मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव: लंबे समय तक चलने वाली हीटवेव थकान, तनाव और नींद संबंधी विकारों का कारण बन सकती है।

(ii) संवेदनशील क्षेत्र और आबादी

- भौगोलिक हॉटस्पॉट: राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और दिल्ली जैसे राज्यों में भीषण गर्मी पड़ती है।
- उच्च जोखिम वाले समूह: बाहरी मजदूर, झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले लोग, ग्रामीण आबादी और पहले से ही स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से पीड़ित लोग।

जा रही है, इसलिए केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने राज्यों को

Centre tells States to be prepared to tackle heat-related ailments

The Hindu Bureau
NEW DELHI

The Union government on Thursday directed the States to review the preparedness of health facilities for the management of heatstroke cases and heat-related illnesses.

Union Health Secretary Punya Salila Srivastava, in a letter, noted that with the onset of summer, an increase in exposure to heat, including extreme conditions, may occur.

She said as some places in the country had begun experiencing high temperatures, health facilities needed to increase their resilience to heat by arranging uninterrupted power supply for the constant functioning of cooling appliances, installation of solar panels (wherever feasible), energy conservation measures and steps to reduce indoor heat through cool/green roofs (NDMA guidelines may be referred), window shades and so on.

Health facility preparedness must be reviewed for the availability of adequate quantities of essential medicines, intravenous fluids, ice packs, oral rehydration solution, and all necessary equipment to provide active, emergency cooling, the Ministry said.



To escape the Sun, a mother covers her son with her stole on Thursday. NAGARA GOPAL

“Rainwater harvesting and recycling plants may also be explored for self-sufficiency in water,” she said.

The Ministry said that public health and clinical guidelines on ‘heat and health’ are available on the website of the National Centre for Disease Control.

“States should disseminate these guidance documents to all districts for effective preparedness of health departments and health facilities to prevent, manage, and monitor the health impact of extreme heat,” she said.

From March 1, through daily surveillance, patient-level information on clinical diagnosis of heatstroke is being captured on the Integrated Health Information Platform for all States and Union Territories.

2. सरकारी उपाय और तैयारी संबंधी दिशा-निर्देश

► राज्यों को मुख्य निर्देश

○ स्वास्थ्य सुविधा की तैयारी:

- शीतलन उपकरणों के लिए निर्बाध बिजली आपूर्ति।
- सौर पैनलों की स्थापना और ऊर्जा-कुशल उपायों को अपनाना।
- इनडोर तापमान को कम करने के लिए कूल/ग्रीन रूफिंग तकनीक (एनडीएमए दिशा-निर्देशों के अनुसार)।

○ चिकित्सा अवसंरचना की तैयारी:

- आवश्यक दवाओं, IV तरल पदार्थ, आइस पैक और ओरल रिहाइड्रेशन साल्ट (ओआरएस) का भंडारण।
- आपातकालीन देखभाल इकाइयों में शीतलन उपकरण की उपलब्धता।
- वर्षा जल संचयन और पुनर्चक्रण संयंत्रों के माध्यम से जल संरक्षण सुनिश्चित करना।

○ सार्वजनिक स्वास्थ्य जागरूकता और निगरानी:

- राष्ट्रीय रोग नियंत्रण केंद्र (एनसीडीसी) द्वारा 'हीट एंड हेल्थ' दिशा-निर्देशों का प्रसार।
- एकीकृत स्वास्थ्य सूचना मंच (IHIP) के माध्यम से हीटस्ट्रोक मामलों पर दैनिक निगरानी और डेटा संग्रह।

3. हीटवेव प्रबंधन के व्यापक निहितार्थ

(i) जलवायु परिवर्तन और बढ़ती हीटवेव

- ग्लोबल वार्मिंग के कारण हीटवेव की आवृत्ति, अवधि और तीव्रता में वृद्धि हुई है।
- 1901 और 2018 के बीच भारत का औसत तापमान 0.7°C बढ़ा है (आईएमडी रिपोर्ट)।

(ii) दीर्घकालिक रणनीतियों की आवश्यकता

○ शहरी नियोजन और गर्मी-प्रतिरोधी शहर:

- शहरी क्षेत्रों में हरियाली बढ़ाना, परावर्तक छत और बेहतर वेंटिलेशन।

○ कृषि अनुकूलन:

- जल संरक्षण, सूखा प्रतिरोधी फसलें और किसानों के लिए प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली।

○ व्यावसायिक सुरक्षा दिशा-निर्देश:

- ▶ बाहर काम करने वाले श्रमिकों के लिए अनिवार्य विश्राम अवकाश, छायादार कार्यस्थल और जलयोजन सुविधाएँ लागू करना।

4. आगे की राह: भारत की हीट एक्शन प्लान को मजबूत करना

- ▶ पूर्व चेतावनी प्रणाली को बढ़ाना: समय पर अलर्ट के लिए IMD, NDMA और स्थानीय सरकारों के साथ सहयोग करना।
- ▶ समुदाय-आधारित हस्तक्षेप: हीट शेल्टर बनाना, वाटर स्टेशन उपलब्ध कराना और जन जागरूकता अभियान को बढ़ावा देना।
- ▶ विधायी और नीतिगत उपाय: जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) और राज्य-विशिष्ट जलवायु नीतियों में हीटवेव शमन रणनीतियों को एकीकृत करना।

निष्कर्ष

- ▶ केंद्र के निर्देश में गर्मी से संबंधित बीमारियों से निपटने के लिए तैयारी और सक्रिय उपायों की तत्काल आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी ढांचे को मजबूत करना, जन जागरूकता में सुधार करना और जलवायु-लचीली रणनीतियों को अपनाना अत्यधिक गर्मी की स्थिति के खिलाफ सार्वजनिक स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

UPSC Mains Practice Question

प्रश्न: भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य पर हीटवेव के प्रभाव पर चर्चा करें। तैयारी और शमन में सुधार के उपाय सुझाएँ।
(250 words)

गर्भपात के अधिकारों पर बहस जटिल नैतिक, कानूनी और चिकित्सीय विचारों से प्रभावित होती है, विशेष रूप से भ्रूण की व्यवहार्यता के संबंध में - वह अवस्था जिस पर भ्रूण गर्भाशय के बाहर जीवित रह सकता है।

Access to abortion, foetal viability, and laws thereof: women are caught in the crossfire

Studies show that most women do not believe that abortion is family planning, and a majority believe it is a sin. Given this context, it can be surmised that abortion is often a last measure, not a first choice. Why, then, does the general opinion among providers seem to paint all women as ignorant beneficiaries?

Christianeza Ratna Kiruba
Radhikaa Sharma

As people on the inside, we have heard, too often to ignore, doctors bemoan abortions – having to perform them, counselling women who approach them, the very concept of it. Not all, but enough of us would say, “They’re basically making us commit murder,” in a dozen different ways, each more or less as unempathetic.

The image seared into memory from medical school is of a woman in tears, undergoing a procedure with minimal sedation to undergo an abortion at 14 weeks, as the service provider, a consultant, kept muttering under her breath, “making me a culprit in her crime, and now she has tears?” These statements, it seems, grow stronger, and more vitriolic, the later the abortion is scheduled. It seems that the more advanced the gestation, the stronger are these ethical pangs.

In the debate over abortion rights, few concepts are as legally and ethically contentious as foetal viability – the point at which a foetus can survive outside the womb. The problem is that there is no single, definitive moment when viability occurs. Though several different definitions of foetal viability have existed, it is safe to say that the foetus’ right to life grows stronger as the period of the pregnancy progresses. However, this vagueness of viability lends itself to legal and ethical arguments surrounding abortions across the world.

India can consider itself somewhat lucky. In the same year that the U.S. Supreme Court overturned *Roe v. Wade* and set abortion rights back by half a century, the Indian top court delivered a momentous judgment. It noted that single “unmarried” women, who often struggle to access abortion care, are naturally granted reproductive choice as part of their personal liberty. These rulings are generally praised for giving women bodily autonomy for abortions – amended from 20 weeks up to 24 weeks in 2021.

Medicolegal barriers

What happens after 24 weeks? That’s where the question of foetal viability enters, and the ethical argument surrounding abortions heat up. The most recent amendment to The Medical Termination of Pregnancy Act, 1971 (MTP Act) allows abortions to be conducted by one registered medical practitioner (RMP) until 20 weeks, and two RMPs up to 24 weeks of pregnancy. From 24 to 30 weeks of pregnancy, all abortions must be reviewed by a medical board.

Medical boards are governed by strict laws. They can only approve cases where the foetus has abnormalities that are



The Supreme Court ruled that all women, regardless of marital status, have the right to safe and legal abortion up to 24 weeks of gestation, striking down the distinction between married and unmarried women in the MTP Act. Image used for representational purposes only. AP

incompatible with life, or if continuing the pregnancy would significantly harm the pregnant person’s health. “Even if a foetus has some serious illness but can be medically managed with available facilities, even if the life expectancy is limited in a foetus with thalassemia, we do not recommend [an abortion],” Jyoti Bunglowalla, an obstetrician in Indore, says. This reflects the general medical doctrine, where the sanctity of life outweighs the quality of life.

“Late-term abortions are mostly in cases of assault, especially cases of minors, where the victim doesn’t really come out about the pregnancy until it is at an advanced stage,” Dr. Bunglowalla says. “We have to remember that these are not common cases. We have great legislations protecting both women and doctors for abortions up to 20 weeks.”

The decision-making process for these abortions is on a case-by-case basis, and guided by the Medical Board. Their decisions can be appealed in a court of law, and here, the subjectivity of law deepens even more.

Stopping the heartbeat

In 2023, a 27-year-old mother of two did not discover her pregnancy until almost 25 weeks. This was due to lactational amenorrhoea a condition where breastfeeding mothers do not resume their menstrual cycles. Her previous pregnancy a year back, had led her to develop postpartum depression and psychosis, which was being managed on medication. With a breastfeeding infant and a serious mental health condition, she sought an MTP, and a medical board was set up. While the MTP was initially allowed, a member of the board emailed the court. At this late stage, they stated, they would either have to deliver a preterm baby who would need intensive



Late-term abortions are mostly in cases of assault, especially cases of minors, where the victim doesn’t really come out about the pregnancy until it is at an advanced stage

care, or would have to stop the heartbeat to complete the abortion. This email was sent five days after the MTP had been allowed, and the petitioner was now 26 weeks pregnant.

Despite the fact that “stopping the heartbeat” is a routine procedure in late-term abortions for foetuses with congenital anomalies, this case was dependent on morality. The woman was asked if she would want to “stop the heartbeat”, without considering the moral and emotional burden it placed on her. No, she said, but she was resolute in not wanting the child either. The court ruled for her to continue the pregnancy.

Others have been denied late-term abortions since then. The law accedes to women their reproductive choice, but it may also favour the unborn child’s right to live – as long as they do not show any obvious congenital anomalies. This, despite the fact that most of these judgments state that the foetus would almost certainly suffer harm if the pregnancy were to be terminated at that point.

“While it is possible to resuscitate and manage a 24 weeker in a state-of-the-art private facility, it is rare,” Shruti Kashyap, a paediatrician, says. “When you think of Indian set-ups, with the scarcity of resources, maybe a 26 week [foetus] can be managed, given the best possible care.” The 24-week limit is based on the

theoretical concept of viability. So what happens as medical advancements allow us to resuscitate foetuses at an even earlier period? Will abortion rights be based on neonatal medicine developments?

A question of ethics

Philosophically speaking, one could argue for or against the rights of the foetus, depending on one’s own beliefs. Ethics in medicine are led by the premise of *primum non nocere* or ‘first, do no harm’. This, arguably, should prioritise the rights of the pregnant person, and the harm that she may incur. “Now the problem [beyond 24 weeks] is that even if one terminates the pregnancy, they’ll have a premature delivery. The news makes it sound like doctors are denying abortions. At that point we have to consider both the foetus and the mother’s life. Even the case of the 14-year-old [who approached the court] at 30 weeks – her abortion was not carried out because there was a high risk to her life if the abortion is carried out at that stage. If there is any risk, how can one conscientiously agree [to provide an abortion]?”

However, cases like the 2023 judgement show that the courts can, and do, prioritise foetal life over the mother’s mental and physical health. Late term abortions are not requested commonly – and this case may have set a precedent, showing that women can be compelled to carry pregnancies, even if they vouch that the pregnancy is unwanted and dangerous to their well-being. Studies have consistently shown that most women do not believe that abortion is often a last measure, not a first choice. Why, then, does the general opinion among providers seem to paint all women as ignorant beneficiaries?

Exception to the law

One must remember that the MTP Act doesn’t provide abortions on request. It is an exception to the law against abortions, to protect providers from the Indian Penal Code in very specific cases. This means that doctors often seek to protect themselves. “When providers attend to an unmarried person seeking an MTP, they ask for consent – but this is usually because they want to protect themselves against lawsuits,” Sita Srinivasan, a gynaecologist practising in Assam, says.

(Dr. Christianeza Ratna Kiruba is an internal medicine doctor with a passion for patient rights advocacy. christianeza.dennis@gmail.com, Radhikaa Sharma is a public health physician in Delhi, and an associate editor for Nivarana.)

THE GIST

Few concepts are as contentious as foetal viability. It is safe to say that the foetus’ right to life grows stronger as the pregnancy progresses. However, this vagueness of viability lends itself to legal and ethical arguments that surround abortions across the world

The recent amendment to the MTP Act allows abortions to be conducted by one registered medical practitioner until 20 weeks, and two RMPs up to 24 weeks of pregnancy. From 24 to 30 weeks of pregnancy, all abortions must be reviewed by a medical board

Boards will only approve cases where the foetus has abnormalities incompatible with life, or if the pregnancy would harm the woman. If a foetus has a serious illness that can be medically managed, abortion is not recommended. Here sanctity of life outweighs quality of life

History shows that courts can, and do, prioritise foetal life over the mother’s mental and physical health. A legal precedent has already been established that women can be compelled to carry pregnancies, even if they vouch that the pregnancy is unwanted and dangerous to their well-being

- ➡ मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी (एमटीपी) एक्ट, 1971 और इसके संशोधनों ने भारत में गर्भपात के अधिकारों को बढ़ा दिया है, लेकिन 24 सप्ताह के बाद भी महत्वपूर्ण चिकित्सा संबंधी बाधाएँ बनी हुई हैं।
- ➡ जबकि भारत ने प्रजनन अधिकारों का विस्तार किया है, हाल के मामलों से पता चलता है कि महिलाओं की स्वायत्तता अभी भी विवादित है, क्योंकि अदालतें और मेडिकल बोर्ड मातृ स्वास्थ्य के विरुद्ध भ्रूण के जीवन की पवित्रता को तौलते हैं।

भारत के गर्भपात कानून और संशोधनों को समझना

➔ कानूनी ढाँचा: एमटीपी एक्ट, 1971

- शुरू में केवल सख्त चिकित्सा आधार पर 20 सप्ताह तक गर्भपात की अनुमति थी।
- 2021 के संशोधन ने कुछ श्रेणियों की महिलाओं (बलात्कार, अनाचार और कमज़ोर समूहों की उत्तरजीवी) के लिए गर्भपात के अधिकारों को 24 सप्ताह तक बढ़ा दिया।
- 24 सप्ताह के बाद, गर्भपात के लिए मेडिकल बोर्ड से अनुमोदन की आवश्यकता होती है और केवल तभी अनुमति दी जाती है जब:
 - भ्रूण में जीवन के साथ असंगत विसंगतियाँ हों।
 - गर्भावस्था महिला के स्वास्थ्य के लिए गंभीर जोखिम पैदा करती है।

➔ भ्रूण की व्यवहार्यता और देर से गर्भपात

- भ्रूण की व्यवहार्यता की अवधारणा अस्पष्ट है और चिकित्सा प्रगति के साथ बदलती रहती है।
- वैश्विक स्तर पर, व्यवहार्यता को 24-28 सप्ताह के आसपास माना जाता है, लेकिन भारत में, चिकित्सा बुनियादी ढाँचा 26+ सप्ताह में व्यवहार्यता को चुनौती देता है।
- नैतिक दुविधा: क्या नवजात शिशु की देखभाल में सुधार के साथ गर्भपात के अधिकारों को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए?

नैतिक और कानूनी बहस: भ्रूण के अधिकार बनाम महिला अधिकार

➔ नैतिक विचार

- 'प्रिमम नॉन नोसेरे' (पहले, कोई नुकसान न करें) का सिद्धांत एक दुविधा को जन्म देता है - क्या मातृ स्वायत्तता या भ्रूण के जीवन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए?
- चिकित्सा पेशेवरों को अक्सर नैतिक संघर्षों का सामना करना पड़ता है, खासकर देर से गर्भपात के मामले में।

➔ न्यायिक मिसालें और परस्पर विरोधी फैसले

- 2023 का मामला: एक महिला ने मानसिक स्वास्थ्य जोखिमों के बावजूद 26 सप्ताह में गर्भपात से इनकार कर दिया। अदालत ने गर्भावस्था को जारी रखने का फैसला सुनाया।
- न्यायालय अक्सर महिला के शारीरिक स्वायत्तता के अधिकार पर भ्रूण के जीवन के अधिकार को प्राथमिकता देते हैं, जिससे कानूनी मिसाल कायम होती है जो भविष्य के मामलों को सीमित कर सकती है।

सुरक्षित गर्भपात तक पहुँचने में चुनौतियाँ

➔ चिकित्सा बाधाएँ

○ चिकित्सा बोर्ड सख्त मानदंडों का पालन करते हैं:

- भले ही भ्रूण को कोई गंभीर लेकिन प्रबंधनीय बीमारी हो, गर्भपात से इनकार कर दिया जाता है।
- डॉक्टरों को मुकदमेबाजी का डर है, जिसके कारण वे बहुत सावधानी से इनकार कर देते हैं।

➔ **सामाजिक और सांस्कृतिक कलंक**

- अध्ययनों से पता चलता है कि अधिकांश महिलाएँ गर्भपात को परिवार नियोजन नहीं मानती हैं और कई इसे पाप मानती हैं।
- अविवाहित महिलाओं को प्रदाता पूर्वाग्रह और जागरूकता की कमी सहित अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

आगे का रास्ता: गर्भपात के अधिकारों और नीतियों को मजबूत करना

➔ **कानून में स्पष्टता की आवश्यकता**

- देर से गर्भपात की मंजूरी पर स्पष्ट दिशा-निर्देश स्थापित करना।
- महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित करते हुए डॉक्टरों को अनावश्यक कानूनी जोखिमों से बचाना।

➔ **चिकित्सा और न्यायिक संवेदनशीलता**

- चिकित्सा चिकित्सकों और न्यायालयों को गर्भपात के मामलों में अधिक सहानुभूतिपूर्ण, अधिकार-आधारित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
- जागरूकता अभियान कलंक और गलत धारणाओं का मुकाबला कर सकते हैं।

प्रजनन स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच बढ़ाना

- ➔ ग्रामीण क्षेत्रों में गर्भपात सुविधाओं का विस्तार करना।
- ➔ गर्भपात चाहने वाली महिलाओं के लिए मानसिक स्वास्थ्य सहायता को मजबूत करना।

निष्कर्ष

- ➔ भारत में कई देशों की तुलना में प्रगतिशील गर्भपात कानून हैं, लेकिन मेडिकोलीगल बाधाएँ और न्यायिक व्याख्याएँ महिलाओं की स्वायत्तता को चुनौती देती रहती हैं। गर्भपात का अधिकार केवल भ्रूण की व्यवहार्यता पर सशर्त नहीं होना चाहिए, बल्कि महिलाओं की मानसिक, शारीरिक और सामाजिक-आर्थिक भलाई पर विचार करना चाहिए।

UPSC Mains Practice Question

प्रश्न: भ्रूण की व्यवहार्यता की अवधारणा के संदर्भ में गर्भपात से जुड़ी नैतिक दुविधाओं पर चर्चा करें। भारतीय कानून अजन्मे बच्चे के अधिकारों और महिलाओं की प्रजनन स्वायत्तता के बीच किस तरह संतुलन बनाता है? (250 words)

आत्मनिर्भर भारत पहल के तहत आत्मनिर्भरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए भारत का रक्षा क्षेत्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। हालांकि, हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (HAL) द्वारा स्वदेशी लड़ाकू विमानों के धीमे उत्पादन के कारण भारतीय वायु सेना (IAF) को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। चूंकि भारत सबसे बड़े हथियार आयातकों में से एक बना हुआ है, इसलिए अमेरिकी रक्षा प्रौद्योगिकी पर इसकी बढ़ती निर्भरता रणनीतिक स्वायत्तता पर सवाल उठाती है।

U.S. defence ties — India needs to keep its eyes open

It is no state secret that the defence public sector undertakings have the Indian armed forces as their captive customers. In fact, with the 'Aatmanirbhar Bharat' campaign, this dependence has only increased and has added to the stress of planners in the Indian Air Force (IAF) as they juggle with a depleting squadron strength in the IAF due to a poor production rate by Hindustan Aeronautics Limited. After the IAF chief made his angst clear at the Aero India-2025 show in Bengaluru in February, there has been a flurry of media statements about how a reinvigorated environment is now geared up to supply Tejas Mk1A Light Combat Aircraft (LCA) jets. This month, the handing over event of the first rear fuselage for the Tejas, made by a private manufacturer – with the Defence Minister and the IAF chief present – has also been highlighted in the media.

Even as the report of the Ministry of Defence committee looking into the IAF's needs (including imports) is being evaluated, there are three facts that should help keep us grounded.

SIPRI report and U.S. policy

First, the latest Stockholm International Peace Research Institute (SIPRI) report for 2020-24 shows that India is still the second highest arms importer in the world. However, the fact that India's imports have reduced by 9.3% from 2015-19 is good news, but with a rider – expensive weapon systems such as aircraft, tanks, top end radars, and specialised armament, would continue to be imported for many more years and contribute to the import bill.

Second, the IAF has thrown its full weight behind indigenous fighter aircraft – LCA Tejas Mk1A, Tejas Mk2 and the Advanced Medium Combat Aircraft (AMCA), all of which are planned with American engines. The IAF's kinetic operational potential would, thus, become a function of America's calculations of India's worth in its strategic calculus. Would India be weaned away from its heavy dependence on



Air Vice Marshal Manmohan Bahadur (retired)

is former Additional Director General, Centre for Air Power Studies

New Delhi needs to avoid a dependency that affects its strategic autonomy

Russia, which contributes to 36% of its arms imports? The IAF's inventory of 270 Sukhoi Su-30 fighters, S-400 missile systems and similar big-ticket items for the Indian Army and the Indian Navy stand out against a positive affirmation.

Third, the frequent coinage of fancy-sounding new policies in India-U.S. relations in the past two decades should keep India on its toes *vis-à-vis* their demonstrated short shelf life. Whatever became of the 'Defence Technology and Trade Initiative' of 2012 which was much tom-tommed, and also said to bring in niche cutting-edge technology and usher in a new paradigm in defence cooperation? Are we sure that the end result of the recently announced framework for the 'U.S.-India Major Defence Partnership in the 21st Century' would be any different considering the tempestuous churn in American foreign policy with a transactional new U.S. administration under President Donald Trump?

'Partnership' is the key word

There is historical reality to back this negative appreciation. The joint statement, after U.S. Secretary of Defence Ashton Carter's visit to India in April 2016, said that [a] "defense relationship is a key component of the strategic partnership between India and the US." Similar sentiments have been expressed recently after the Trump-Modi talks.

The key word is 'partnership'. But the million-dollar question is whether two nations that are culturally, financially and with differing world outlooks, be true partners. An article by Anna Simons, Professor of Defence Analysis, in the Winter 2013-14 issue of the U.S. Army War College magazine, *Parameters*, says that "...a partnership can succeed only if it is grounded in mutual indispensability", since "...anything less creates a dependency, and a dependency by definition is not partnership." This raises the question whether India and the U.S. are indispensable to each other. And if they are not,

then can Washington and New Delhi be true partners?

The indispensability factor can be tested by seeking answers to three pointers. First, are both parties equals, interchangeable and can blend seamlessly? Second, is a division of tasks possible for joint programmes? Third, can the expertise possessed by each nation complement and fill the gaps that exist in the other's capabilities? A truthful analysis of their respective defence research and development and manufacturing sectors shows that there is great asymmetry in the capabilities, and the follow up can only result in India's stifling dependency on the U.S.

But the same questions can be asked about the other relationships of India too, say with Russia, Israel or France. The answer lies in whether India has a political indispensability quotient in such strategic relationships or whether it is like the U.S.-Pakistan 'partnership' that broke when Islamabad outlived Washington's geo-political interests and was dumped like a fly in a tea cup. Or, even the recent unravelling of the U.S.'s decades long and iron-clad trans-Atlantic partnership with Europe, leading to questions being asked about the reliability of the Trumpian friendship.

Looking ahead

This brings us back to the theme of this article. Are we heading the correct way as we look to the U.S. for our strategic armament needs? The answer, surprisingly, actually lies with Washington on whether the U.S. wants a 'true partnership', in which case it has to make India politically indispensable to itself (the U.S.) by imbuing a special friendly slant in our relations. On India's part, New Delhi must ensure that its decisions 'insure' its interests against any U.S. policy reversal in the geopolitical environment that it is placed in. Even as India imports vitally needed aircraft and other equipment, its eyes need to be wide open to avoid a dependency that would negatively affect its strategic autonomy.

भारत-अमेरिका रक्षा संबंधों में प्रमुख चिंताएँ

1. हथियारों के आयात पर भारत की निर्भरता

- ▶ स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट (SIPRI) की रिपोर्ट (2020-24) के अनुसार, भारत वैश्विक स्तर पर दूसरा सबसे बड़ा हथियार आयातक बना हुआ है।
- ▶ हालाँकि आयात में 9.3% की कमी आई है, फिर भी भारत उन्नत सैन्य तकनीक के लिए बाहरी आपूर्तिकर्ताओं पर निर्भर है।
- ▶ उच्च-स्तरीय हथियार प्रणालियों (विमान, टैंक, रडार) का आयात जारी है, जिससे भारत की रणनीतिक स्वतंत्रता प्रभावित हो रही है।

2. अमेरिकी रक्षा तकनीक पर निर्भरता

- ▶ भारत के स्वदेशी लड़ाकू कार्यक्रम जैसे तेजस Mk1A, तेजस Mk2 और AMCA अमेरिकी इंजनों के साथ योजनाबद्ध हैं।
- ▶ इससे भारत की सैन्य परिचालन क्षमता अमेरिकी रणनीतिक निर्णयों पर निर्भर हो सकती है।
- ▶ रूस (भारत के हथियारों के आयात का 36%) से अमेरिका की ओर बदलाव दीर्घकालिक सुरक्षा के बारे में चिंताएँ बढ़ाता है।

3. अमेरिकी रक्षा समझौतों की कम अवधि

- ▶ 2012 की रक्षा प्रौद्योगिकी और व्यापार पहल (DTTI), जिसे एक बार गेम-चेंजर के रूप में प्रचारित किया गया था, बिना किसी बड़े परिणाम के फीकी पड़ गई है।
- ▶ अमेरिका के बदलते गठबंधनों (जैसे, अमेरिका-पाकिस्तान संबंध) के इतिहास को ध्यान में रखते हुए, नई अमेरिका-भारत प्रमुख रक्षा साझेदारी का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

रणनीतिक साझेदारी बनाम निर्भरता

- ▶ प्रोफेसर अन्ना सिमंस (अमेरिकी सेना युद्ध कॉलेज) का तर्क है कि एक सच्ची साझेदारी तभी होती है जब दोनों राष्ट्र परस्पर अपरिहार्य हों।
- ▶ भारत और अमेरिका के बीच सांस्कृतिक, वित्तीय और भू-राजनीतिक मतभेद हैं, जिससे इस बात पर संदेह पैदा होता है कि क्या वे समान भागीदार हो सकते हैं।

रणनीतिक साझेदारी के लिए तीन प्रमुख परीक्षण:

- समानता और विनिमेयता - क्या दोनों देश एक साथ निर्बाध रूप से काम कर सकते हैं?
 - कार्यों का विभाजन - क्या संयुक्त रक्षा कार्यक्रमों में साझा जिम्मेदारियाँ हो सकती हैं?
 - पूरक क्षमताएँ - क्या भारत और अमेरिका प्रौद्योगिकी में एक-दूसरे की कमी को पूरा कर सकते हैं?
- ▶ अमेरिका पर भारत की निर्भरता पाकिस्तान की पिछली निर्भरता को प्रतिबिंबित कर सकती है, जो वाशिंगटन के भू-राजनीतिक हित में बदलाव के बाद खत्म हो गई थी। इसी तरह, राष्ट्रपति ट्रम्प के तहत यूरोप के साथ अमेरिका के कमजोर होते संबंध अमेरिकी गठबंधनों की अस्थिरता को उजागर करते हैं।

भारत के लिए आगे की राह

- ▶ अतिनिर्भरता से बचना: भारत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके रक्षा अधिग्रहण रणनीतिक स्वायत्तता से समझौता न करें।
- ▶ विविध साझेदारी: केवल अमेरिका पर निर्भर रहने के बजाय, भारत को रूस, इज़राइल और फ्रांस के साथ मजबूत संबंध बनाए रखने चाहिए।
- ▶ स्वदेशी क्षमताओं को मजबूत करना: आत्मनिर्भर भारत की सफलता आयात पर दीर्घकालिक निर्भरता को कम करने के लिए घरेलू रक्षा विनिर्माण को बढ़ावा देने पर निर्भर करती है।
- ▶ नीति स्थिरता सुनिश्चित करना: भारत को अचानक नीतिगत बदलावों को रोकने के लिए अमेरिका से दीर्घकालिक प्रतिबद्धताओं की मांग करनी चाहिए।

निष्कर्ष

- ▶ जबकि अमेरिका के साथ भारत के रक्षा संबंध महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करते हैं, उन्हें सावधानी के साथ आगे बढ़ाया जाना चाहिए। रणनीतिक स्वायत्तता मार्गदर्शक सिद्धांत बनी रहनी चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि भारत किसी एक देश पर अत्यधिक निर्भर न हो जाए। नई दिल्ली को अपनी आंखें खुली रखनी चाहिए और वाशिंगटन में अप्रत्याशित भू-राजनीतिक बदलावों के खिलाफ अपने हितों को 'बीमा' करना चाहिए।

UPSC Mains Practice Question

प्रश्न: राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करने में प्रमुख शक्तियों (अमेरिका, रूस, फ्रांस, इजरायल) के साथ भारत की रक्षा साझेदारी की भूमिका पर चर्चा करें। भारत रणनीतिक स्वायत्तता बनाए रखते हुए इन साझेदारियों को कैसे संतुलित कर सकता है? (250 words)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 स्कूलों में तीन-भाषा नीति का प्रस्ताव करती है, जिसमें तीसरी भाषा का अध्ययन अनिवार्य है। हालाँकि, यह दृष्टिकोण भारत की शैक्षिक प्रणाली में व्यवहार्यता, संज्ञानात्मक प्रभाव और संसाधन आवंटन के बारे में चिंताएँ पैदा करता है।

The flawed push for a third language

While students can study multiple languages privately, it's not cost-effective to fund the teaching of more than two languages in public schools. When India's schools struggle with basic proficiency in two languages, enforcing a third without any clear benefits is deeply flawed

FULL CONTEXT

K. Ashok Vardhan Shetty

Evidence-based policymaking relies on data, research, and statistical analysis – not ideology, untested assumptions or political convenience. It ensures that policies address real needs, maximise effectiveness, and avoid unnecessary burdens. By this standard, the National Education Policy (NEP) 2020's push for a third language in schools fails to meet the mark.

What do surveys say?

Any discussion on teaching a third language must begin with an honest evaluation of India's school system and its capacity to teach subjects effectively. The Programme for International Student Assessment (PISA), a global test which evaluates reading, math, and science skills of 15-year-olds, conducted every three years by the Organisation for Economic Co-operation and Development, highlights India's struggle. In 2009, India ranked 73 out of the 74 participating countries, ahead of only Kyrgyzstan. Since then, India has withdrawn from PISA. In contrast, countries like Singapore, China, South Korea, Estonia and Finland have consistently ranked near the top, reflecting the strength of their school education systems.

Domestic surveys paint an equally dismal picture. The National Achievement Survey (NAS), conducted every three years since 2001, assesses learning outcomes in Classes 3, 5, 8, and 10. NAS 2017 found that only 48% of Class 8 students could read a simple paragraph in their regional language or Hindi; only 47% could write an essay or letter; and just 42% had a good grasp of grammar. NAS 2021 showed slight improvements of 56%, 49%, and 44%, respectively. NAS 2018 found that English proficiency, tested only at the Class 10 level, was equally poor. Notably, NAS does not assess third-language proficiency, raising concerns about policymakers' reluctance to scrutinise its effectiveness.

The Annual State of Education Report (ASER), conducted by the NGO Pratham, assesses school enrolment and learning outcomes in rural India. ASER 2018 found that 27% of Class 8 students couldn't read even a Class 2-level text properly in their regional language or Hindi. This worsened to 30.4% in 2022. In 2016, the percentage of Class 8 students who could not read even simple sentences in English was 73.8%; in 2022, it was still a staggering 53.3%. Like NAS, ASER does not evaluate third-language proficiency. Many of India's school students are struggling with even their mother tongue and barely managing English, which raises the question: isn't it better to teach two languages well rather than three poorly? The absence of credible data on third-language proficiency shields the policy from scrutiny. Even NEP 2020 fails to address this data gap.

Therefore, wouldn't it be wiser to allocate scarce resources toward strengthening core subjects like math and science, and emerging technologies such as Artificial Intelligence (AI)? China is already piloting AI in 184 schools, including for six-year-olds. Estonia, Canada, South Korea, and the U.K. are integrating AI into secondary education.

What does research say?

NEP 2020's trilingual policy oversimplifies a complex issue, offering a



Standing strong: MPs hold a protest on the three-language issue, in Parliament on March 11, 2021

single-sentence endorsement without references to global best practices.

The *Cambridge Handbook of Third Language Acquisition* highlights that cognitive benefits occur when learners are challenged but not overwhelmed. Learning a third language (L3) increases cognitive load. If students are still struggling with their first (L1) and second (L2) languages, learning L3 may exceed their cognitive capacity, causing mental fatigue and diminished learning efficiency. It also reduces practice time for L1 and L2, risking their attrition, with L2 being more vulnerable. Cross-linguistic interference can cause pronunciation, grammar, and vocabulary mix-ups. Achieving equal fluency in three languages is rare; one typically dominates while the others weaken. Research also shows that language similarity impacts learning ease. Speakers of Marathi, Punjabi, and Odia (Indo-Aryan languages family) experience facilitative transfer when learning Hindi as L3 due to shared grammar, vocabulary, and phonetics. In contrast, Tamil (Dravidian), Santali (Austro-Asiatic), and Mizo (Sino-Tibetan) speakers face non-facilitative transfer, making L3 acquisition much harder and creating an asymmetric learning burden.

NEP 2020's rigid trilingual mandate overlooks these complexities.

Implementation challenges

While students can study multiple languages privately, it's not cost-effective to fund the teaching of more than two languages in public schools. Adding a third language requires significant investments in teacher recruitment, training, textbooks, and technology – a major challenge for rural schools and budget-constrained States.

NEP 2020 claims that no language will be forced on States, and students are free to choose any three languages, provided that at least two are native to India. However, this "choice" is illusory. Imagine a school in Tamil Nadu where 30% of students want to learn Telugu, 20% Malayalam, 20% Kannada, 10% Hindi, and 10% Sanskrit as their third language. Such varied preferences make it impractical to hire enough qualified teachers for each language. There is a hidden push here for Hindi or Sanskrit in non-Hindi-speaking States because cost and supply constraints will compel schools to offer one or both as the third language.

NEP 2020's three-language policy ignores these real-world challenges.

A policy stuck in the past

NEP 2020 vaguely mentions using technology for language learning but overlooks the game-changing potential of AI-powered translation tools. They can instantly translate text, images, and audio across languages, and also convert text in any language to audio in another language and vice versa, reducing the necessity for multilingual education in its current form.

While learning one's mother tongue or regional language and English are essential for foundational literacy and should be taught using traditional classroom methods enhanced by modern digital tools, the third language doesn't require the same proficiency or classroom instruction. Instead, why not leverage AI to let students learn additional languages independently, based on their needs and at their own pace? This approach would be cost-effective and flexible.

The NEP 2020's approach to language learning clashes with the aspirations of parents and students. It treats languages as cultural pursuits, ignoring their practical value in the job market. Additionally, the policy reveals its ideological bias by dedicating more discussion to Sanskrit – a language with little practical use and limited career opportunities – than English. At a time when nations across Europe, Asia and Latin America, including Russia, China, South Korea, Japan and Brazil, are actively promoting English education, the NEP 2020 fails to acknowledge its crucial role in higher education, science and technology, and global job markets.

Lessons from Singapore

In *From Third World to First*, Lee Kuan Yew, himself of Chinese origin, recounts how he resisted intense pressure from Singapore's Chinese majority (74.3% of population) to declare Mandarin as the sole national language. Recognising that this would alienate Malays (13.5%), Tamils (9%) and other minorities, and to ensure fairness, Lee chose English – a colonial legacy but a neutral language – as Singapore's lingua franca.

Singapore adopted a bilingual education system, with students learning English as their first language and their mother tongue (Mandarin, Malay, or Tamil) as the second. Parents supported English-medium education for better career prospects, while the mother tongue reinforced cultural identity. This policy fostered social cohesion, prevented

ethnic tensions, and ensured cultural preservation. English also drove Singapore's economic rise, transforming it into a global hub for multinational corporations, finance, and innovation. Singapore's school education system is among the best in the world – in PISA rankings, it was 1 in 2015, 2 in 2018, and 1 again in 2022.

Why Hindi won't work as a unifier

The 2011 Census states that 43.63% of Indians speak Hindi. However, noted scholar G.N. Devy, in *India: A Linguistic Civilization*, reveals this figure is inflated by including 53 other languages as "dialects" of Hindi. Several of these languages like Awadhi, Bhojpuri, Brajbhasha, Magadhi, Chattisgarhi, and Rajasthani, are completely independent languages, much older than Hindi. Excluding these, true Hindi speakers account for just 25% of the population.

Moreover, the 2011 Census highlights that 63.46% of Indians have never left their birthplace, 85.27% remain within their native district, and 95.28% never migrated out of their home State. With job opportunities concentrated in non-Hindi speaking States in the south and west and New Delhi, inter-State migrations are mostly away from the Hindi heartland. When only 25% of Indians speak Hindi and 95% of Indians remain within their home States and use only their languages, the push for Hindi as a national lingua franca, whether direct or indirect, is completely misguided.

The idea that a single language is essential for national unity is a European import. In the 19th and 20th centuries, Germany, Italy, Poland, Hungary, Romania and several other European countries embraced linguistic nationalism. But applying this model to India – one of the world's most linguistically diverse civilisations – is deeply flawed. It is like replacing a vibrant, biodiverse forest with a sterile monoculture. Historian John Keay, in *Midnight's Descendants*, credits India's linguistic flexibility for its unity, unlike Pakistan, which tried imposing Urdu as the sole national language, alienating Bengalis and leading to Bangladesh's creation. India recognised 22 languages in the Constitution's Eighth Schedule, reorganised States linguistically, and retained English as an official language – defusing tensions, preserving unity, and strengthening federalism.

Evidence over ideology

The NEP 2020's mandatory three-language policy is a textbook example of ideology trumping evidence. When India's schools struggle with basic proficiency in two languages, enforcing a third without any clear benefits or consideration for cognitive strain, funding and implementation is deeply flawed.

One reason non-Hindi speaking southern States, particularly Tamil Nadu, outperform the Hindi heartland economically is because of their greater embrace of English. Tamil Nadu's successful two-language policy, in place since 1968, proves that linguistic pragmatism fuels progress. Yet, NEP 2020 disregards both internal successes and global best practices, pushing a rigid trilingual mandate.

India should learn from Singapore and adopt a pragmatic two-language policy, emphasising English for global competitiveness and regional languages for cultural preservation. Linguistic nationalism must give way to policies that empower students.

Writer is a retired IAS officer and former VC of Indian Maritime University, Chennai.

THE GIST

▼ The *Cambridge Handbook of Third Language Acquisition* highlights that cognitive benefits occur when learners are challenged but not overwhelmed. Learning a third language (L3) increases cognitive load.

▼ NEP 2020 vaguely mentions using technology for language learning but overlooks the game-changing potential of AI-powered translation tools.

▼ The 2011 Census states that 43.63% of Indians speak Hindi. However, noted scholar G.N. Devy, in *India: A Linguistic Civilization*, reveals this figure is inflated by including 53 other languages as "dialects" of Hindi. Several of these languages like Awadhi, Bhojpuri, Brajbhasha, Magadhi, Chattisgarhi, and Rajasthani, are completely independent languages, much older than Hindi.

मुख्य मुद्दे:

1. भाषाओं में आधारभूत दक्षता की कमी:

- **PISA** रैंकिंग: **2009** में भारत **74** देशों में से **73**वें स्थान पर था; तब से, भारत **PISA** से हट गया है।
- **NAS** निष्कर्ष: **2017** में, कक्षा **8** के केवल **48%** छात्र अपनी क्षेत्रीय भाषा या हिंदी में एक सरल पैराग्राफ पढ़ सकते थे। **2021** में, यह बढ़कर **56%** हो गया।
- **ASER** डेटा: **2018** में, कक्षा **8** के **27%** छात्र कक्षा **2**-स्तर का पाठ नहीं पढ़ सकते थे; **2022** में, यह और भी खराब होकर **30.4%** हो गया।
- अंग्रेजी दक्षता: **ASER 2016** में पाया गया कि कक्षा **8** के **73.8%** छात्र सरल अंग्रेजी वाक्य नहीं पढ़ सकते। **2022** तक, यह अभी भी **53.3%** पर उच्च था।
- तीसरी भाषा प्रवीणता पर कोई डेटा नहीं: मूल्यांकन डेटा की कमी तीसरी भाषा को लागू करने की प्रभावशीलता के बारे में चिंताएँ पैदा करती है।

2. संज्ञानात्मक और सीखने का बोझ:

- कैम्ब्रिज हैंडबुक ऑफ़ थर्ड लैंग्वेज एक्विजिशन इस बात पर प्रकाश डालता है कि अत्यधिक संज्ञानात्मक भार सीखने में बाधा डाल सकता है।
- अपनी पहली (**L1**) और दूसरी (**L2**) भाषाओं से जूझ रहे छात्रों को तीसरी (**L3**) सीखना भारी लगेगा।
- भाषा समानता प्रभाव: मराठी/ओडिया बोलने वालों के लिए हिंदी सीखना आसान है, लेकिन तमिल/संथाली बोलने वालों के लिए मुश्किल है, जिससे विषम बोझ पैदा होता है।

3. कार्यान्वयन चुनौतियाँ:

- **संसाधन की कमी:**
 - कई भाषाओं के लिए शिक्षकों को नियुक्त करना आर्थिक और तार्किक रूप से चुनौतीपूर्ण है।
 - ग्रामीण स्कूलों में प्रभावी भाषा शिक्षण के लिए बुनियादी ढाँचे की कमी है।
 - भ्रामक विकल्प: जबकि **NEP 2020** छात्रों को अपनी तीसरी भाषा चुनने की अनुमति देता है, वास्तव में, स्कूल केवल हिंदी या संस्कृत जैसे लागत प्रभावी विकल्प ही प्रदान करेंगे, जिससे वास्तविक विकल्प सीमित हो जाएँगे।

4. आर्थिक और तकनीकी विचार:

- शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (**AI**): **AI**-संचालित अनुवाद उपकरण कठोर बहुभाषी शिक्षा की आवश्यकता को कम करते हैं।
- वैश्विक आर्थिक आवश्यकताएँ: चीन, जापान और दक्षिण कोरिया जैसे राष्ट्र वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए अंग्रेजी पर जोर देते हैं।
- सिंगापुर से सबक: सिंगापुर ने दो-भाषा मॉडल (अंग्रेजी + मातृभाषा) को अपनाया, जिससे आर्थिक आकांक्षाओं को सांस्कृतिक पहचान के साथ संतुलित किया जा सका। देश वैश्विक शिक्षा सूचकांकों में सर्वश्रेष्ठ में से एक है।

5. भाषाई राष्ट्रवाद बनाम व्यावहारिकता:

- एक लिंगुआ फ्रैंका के रूप में हिंदी?: 2011 की जनगणना बताती है कि **43.63%** भारतीय हिंदी बोलते हैं, लेकिन जी.एन. देवी का तर्क है कि **53** अलग-अलग भाषाओं को शामिल करके यह आँकड़ा बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है।
- कम आंतरिक प्रवास: **95.28%** भारतीय अपने गृह राज्य में ही रहते हैं, जिससे एक आम राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता कम हो जाती है।

ऐतिहासिक सबक:

- ➔ पाकिस्तान का उर्दू थोपना: भाषाई कठोरता के कारण बंगालियों का अलगाव हुआ और बांग्लादेश का निर्माण हुआ।
- ➔ भारत की भाषाई लचीलापन: आठवीं अनुसूची में **22** भाषाओं को मान्यता दिए जाने से राष्ट्रीय एकता बनी हुई है।

निष्कर्ष:

- ➔ एनईपी **2020** की तीन-भाषा नीति में अनुभवजन्य समर्थन का अभाव है और यह भारत की मौजूदा भाषा प्रवीणता समस्याओं की अनदेखी करती है।
- ➔ दो-भाषा मॉडल (अंग्रेजी + क्षेत्रीय भाषा) वैश्विक आर्थिक मांगों और स्थानीय भाषाई विविधता के साथ संरेखित होकर अधिक व्यावहारिक होगा।
- ➔ भारत को वैचारिक भाषा प्रवर्तन की तुलना में मूलभूत साक्षरता, एआई-संचालित भाषा सीखने और व्यावहारिक नीति निर्माण को प्राथमिकता देनी चाहिए।

UPSC Mains Practice Question

प्रश्न: राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के त्रि-भाषा फॉर्मूले का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें। भारत के विविध भाषाई परिदृश्य में इसका कार्यान्वयन कितना व्यवहार्य है? (250 words)

The judiciary's 'between a rock and hard place' moment

The facts in the Justice Yashwant Varma case are indeed disturbing. In an apparent accidental fire in an outhouse on the premises of his official bungalow in New Delhi (while he was not in town), the fire department seemed to have found several sacks of high value currency notes (₹500), which had been burnt, some partially. Someone in the police/fire department recorded a video when the firemen were trying to douse the fire.

The next evening, the Delhi police chief reported the incident to the Chief Justice of the Delhi High Court, where Justice Varma is a senior judge. This was then conveyed to the Chief Justice of India (CJI), who convened a meeting of the Collegium. A decision was taken to repatriate Justice Varma back to his parent court, the High Court of Allahabad. Justice Varma's response was also sought where he denied that any money had been stored in that room and even suggested that it might be a conspiracy against him.

However, when the news of the incident spread, it caused such a public furore that the CJI convened other meetings of the Collegium and decided to institute an in-house enquiry conducted by a three-judge committee which included two Chief Justices of the High Court of Himachal Pradesh and Punjab and Haryana, and a lady judge from the Karnataka High Court. The CJI also sought the call records of Justice Varma as well as those of his staff for the last six months. The CJI decided to release all the information related to the incident in the public domain, which included the video of the currency notes being found. These steps were indeed a case of welcome transparency. The CJI thereafter advised the Chief Justice of the Delhi High Court not to assign any judicial work to Justice Varma till such time as the inquiry is completed. Though Justice Varma's explanation does not appear to be very credible, one should still await the findings of the inquiry committee. There is no doubt that the report of the committee will shed light on what really happened.

A triggering of the government

The public furore that erupted has enabled the government to fish in the troubled waters of the judiciary, and the government is now using this incident to try and retake control of the power of appointing judges. To this end, the Vice-President of India (and the Chairman of the Rajya Sabha) has invited political leaders from the government and the Opposition to discuss why the National Judicial Appointments Commission (NJAC) Act, which was struck down by the Supreme Court of India as violative of the basic structure of the Constitution, should not be brought back. The NJAC Act essentially formed an appointment committee comprising the CJI, two senior judges of the Court, the Union Law Minister and two eminent persons to be nominated by a committee



Prashant Bhushan

is a Public Interest Lawyer practising before the Supreme Court of India

comprising the CJI, the Prime Minister of India and the Leader of the Opposition in the Lok Sabha. It also placed the secretariat of this commission with the Law Ministry. Seven judges of the Court held the view that this would provide substantial scope to the government to interfere with judicial appointments and that would erode the independence of the judiciary, which is part of the basic structure of the Constitution. Thus, despite the NJAC Act having been brought by way of a constitutional amendment, it was declared invalid by the Court.

Government's game plan

In the recent past, the Narendra Modi government has seriously interfered with the appointment of judges despite the law being that the power of selection is with the Collegium of the Supreme Court and that the government can only return the name of the judges selected by the Collegium once to the Collegium if it is dissatisfied. Thereafter, if the Collegium reiterates its choice, the government is left with no option but to notify the appointment. However, in recent years, the Modi government has stymied the selection of independent judges by the Collegium, by sitting on recommendations, sometimes for years, without any response, and without notifying the appointments. Even when it is forced to respond and it returns the names with objections, and thereafter, even after it is unanimously reiterated by the Collegium, it has still not notified the appointments of many judges who are considered 'inconvenient' to the government. At the same time it is quick to notify the appointments of those judges that the government likes.

During these years, on several occasions, the Collegium appears to have bent backwards to appease the government by selecting some judges who are favoured by the government in order to get some of those that it has recommended appointed. This has led to the appointment of many judges who are either committed to the government's Hindutva ideology or who are weak and unable to resist the diktats and wishes of the government. As a result of this, the independence of the judiciary has been substantially eroded in recent years.

Now, using the Justice Varma case, the government is seeking even greater control and say in the matter of appointments of judges. If the government succeeds in this attempt, it will no doubt erode the independence of the judiciary – already in a precarious state – even further. This government has been trampling on the fundamental rights of people, rampantly misusing the enforcement agencies and bulldozing the rule of law by using bulldozers. In these circumstances, it is essential for public opinion and the Opposition to see through the government's game plan and resist such an

attempt. There is no doubt that the collegium system of the appointment of judges is far from perfect and that its lack of transparency and any proper criteria for selecting judges have led to much nepotism and improper appointments through the Collegium as well. However, the solution is not greater government control. The problem with the Collegium is that it comprises sitting judges who are very busy with their judicial work and have little time to devote to this task.

Appointment of judges, issue of corruption

Every year, hundred judges of the High Court and the Supreme Court are to be selected. In any proper selection process, at least a 1,000 candidates have to be examined for their relative merits and demerits. For this, the right criteria and method to judge people on those criteria should be devised. Unfortunately this has not been done. The solution is to have a full-time judicial appointments commission, comprising retired judges and other eminent public men, who are totally independent of the government, and with a secretariat under their control which would select judges in a transparent manner. This would be a much better solution to address the problem of the appointment of judges – and what the Campaign for Judicial Accountability & Judicial Reforms has been advocating for a long time. However, the particular problem highlighted by the Justice Varma case is the problem of corruption in the Indian judiciary, which also needs a solution. The Constitution only provided for impeachment as a method. But this method has not been found to be practical or desirable because it starts with the signatures of 100 Members of Parliament to begin with, and ends with a vote in both Houses of Parliament.

Both are political processes, which often get politicised by political parties. This is why no judge has ever been successfully impeached in the history of the country, despite public knowledge that there is much corruption in the higher judiciary. What we need is a high-powered and full-time judicial complaints commission comprising five men/women who are independent of the government as well the judiciary. This complaints commission can receive complaints against judges of the higher judiciary from people. If they feel that there is a prima facie case, they can have the matter investigated or hold the trial of the judge through another committee, much like the judges inquiry committee.

However, the commission should decide what needs to be done with that judge, and their decision should be final, subject to judicial review only in exceptional circumstances. These matters should not go to Parliament at all. This would address the problem of judicial misconduct and corruption to a substantial degree.

Solutions to address the key issues of misconduct and corruption and appointments exist, while also keeping the independence of the judiciary intact

Paper 02 : भारतीय राजनीति

UPSC Mains Practice Question: न्यायपालिका की स्वतंत्रता संविधान के मूल ढांचे का एक हिस्सा है। चर्चा करें कि न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत में न्यायिक स्वायत्तता और शक्ति संतुलन को कैसे प्रभावित करती है।

संदर्भ:

- न्यायमूर्ति यशवंत वर्मा मामले ने न्यायिक ईमानदारी, पारदर्शिता और भारत में न्यायिक नियुक्तियों के बड़े मुद्दे पर बहस को हवा दे दी है। उनके परिसर में एक आउटहाउस में उच्च मूल्य के नोटों की बोरियों की खोज से जुड़ी इस घटना ने सार्वजनिक आक्रोश और उच्च स्तरीय जांच को जन्म दिया है। न्यायिक नियुक्तियों पर अधिक नियंत्रण के लिए विवाद का उपयोग करते हुए सरकार की प्रतिक्रिया ने न्यायिक स्वतंत्रता के बारे में चिंताएँ पैदा की हैं।

मुख्य मुद्दे:

- **1. न्यायमूर्ति वर्मा मामला और न्यायिक पारदर्शिता:**
 - न्यायमूर्ति वर्मा के आधिकारिक आवास के एक आउटहाउस में आकस्मिक आग लगने से आंशिक रूप से जले हुए उच्च मूल्य के नोट मिले।
 - घटना की एक वीडियो रिकॉर्डिंग लीक हो गई, जिससे मामले की कॉलेजियम जाँच शुरू हो गई।
 - भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) ने घटना की जाँच के लिए तीन न्यायाधीशों की समिति गठित की और दिल्ली उच्च न्यायालय को सलाह दी कि जाँच पूरी होने तक न्यायमूर्ति वर्मा से न्यायिक कार्य वापस ले लिया जाए।
 - हालांकि उठाए गए कदम अभूतपूर्व स्तर की पारदर्शिता को दर्शाते हैं, लेकिन जांच के निष्कर्ष न्यायिक विश्वसनीयता पर प्रभाव को निर्धारित करेंगे।
- **2. एनजेएसी को पुनर्जीवित करने का सरकार का प्रयास:**
 - इस विवाद ने सरकार को राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) को पुनर्जीवित करने के लिए दबाव बनाने का अवसर प्रदान किया है।
 - भारत के उपराष्ट्रपति ने एनजेएसी को बहाल करने के लिए राजनीतिक नेताओं के साथ चर्चा शुरू की है, जिसे पहले संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन करने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया था।
 - एनजेएसी अधिनियम में सरकारी प्रतिनिधियों वाली एक न्यायिक नियुक्ति समिति का प्रस्ताव था, जिसे न्यायपालिका ने कार्यकारी हस्तक्षेप की चिंताओं के कारण खारिज कर दिया था।
- **3. न्यायिक नियुक्तियों में सरकार की भूमिका:**

Daily News Analysis

- सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बावजूद, मोदी सरकार पर न्यायिक नियुक्तियों को मंजूरी देने में जानबूझकर देरी करने का आरोप लगाया गया है।
- सरकार अक्सर कॉलेजियम की सिफारिशों पर ध्यान नहीं देती है या अपनी विचारधारा से जुड़े न्यायाधीशों का पक्ष लेते हुए चुनिंदा नियुक्तियों को अधिसूचित करती है।
- इससे यह आरोप लगने लगे हैं कि न्यायिक स्वतंत्रता का हास हो रहा है, न्यायपालिका कभी-कभी कुछ नियुक्तियों को सुनिश्चित करने के लिए समझौता कर लेती है।
- **4. न्यायिक भ्रष्टाचार और जवाबदेही की समस्या:**
 - न्यायमूर्ति वर्मा का मामला न्यायपालिका में भ्रष्टाचार के मुद्दे को उजागर करता है। हालाँकि, हटाने के लिए एकमात्र मौजूदा तंत्र महाभियोग है, जो अव्यावहारिक और अत्यधिक राजनीतिक है।
 - उच्च न्यायपालिका में भ्रष्टाचार के बारे में सार्वजनिक जानकारी के बावजूद, किसी भी न्यायाधीश पर कभी भी सफलतापूर्वक महाभियोग नहीं लगाया गया है।
 - इसका समाधान एक न्यायिक शिकायत आयोग है, जिसमें स्वतंत्र सेवानिवृत्त न्यायाधीश और प्रतिष्ठित व्यक्ति शामिल हैं, जो आरोपों की जाँच कर सकते हैं और राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना कार्रवाई कर सकते हैं।
- **5. पारदर्शी और स्वतंत्र न्यायिक नियुक्ति प्रक्रिया की आवश्यकता:**
 - कॉलेजियम प्रणाली परिपूर्णता से बहुत दूर है, यह पारदर्शिता की कमी, भाई-भतीजावाद और उचित चयन मानदंडों की अनुपस्थिति से ग्रस्त है।
 - सरकार और न्यायपालिका से स्वतंत्र एक पूर्णकालिक न्यायिक नियुक्ति आयोग, योग्यता-आधारित चयन प्रक्रिया सुनिश्चित कर सकता है।
 - आयोग के पास एक समर्पित सचिवालय होना चाहिए और नियुक्ति से पहले उम्मीदवारों का गहन मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष:

- जबकि न्यायमूर्ति वर्मा का मामला न्यायिक कदाचार के बारे में वैध चिंताएँ उठाता है, इसे न्यायिक नियुक्तियों में कार्यकारी अतिक्रमण के बहाने के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।
- लोकतंत्र के लिए न्यायिक स्वतंत्रता सर्वोपरि है, और एनजेएसी जैसी व्यवस्थाओं के पक्ष में कॉलेजियम प्रणाली को कमजोर करना हानिकारक होगा।
- समय की मांग है कि न्यायिक नियुक्तियों में पारदर्शिता बढ़ाने वाले सुधारों को संस्थागत बनाया जाए और न्यायिक जवाबदेही के लिए एक स्वतंत्र व्यवस्था सुनिश्चित की जाए।